Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
Impact Factor 5.3
ISSN No. 2456-1665

समकालीन परिदृश में स्त्री विमर्श (महिला उपन्यासकारों के विशेष संदर्भ में)

शीतल श्रीनिवास बियाणी
हिंदी विभागाध्यक्षा एवं सहयोगी प्रोफेसर
राजर्षी शाहू कला एवं विज्ञान महाविद्यालय वाळूज
तह. गंगापूर, जि. छत्रपती संभाजीनगर (महाराष्ट्र)
sheetalbiyani0610@gmail.com
मो.नं.- ८२०८४२५४६५

आधुनिक हिन्दी साहित्य की रंजनात्मक विधाओं में उपन्यास का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। उसके इस महत्व का कारण उसकी सार्वजनिकता है। साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसकी गणना प्रथम कोटि की विधाओं में होने लगी है।दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि साहित्य जीवन और जगत की बड़ी प्रतिच्छाया है। जीवन और जगत की जितनी सुन्दर अभिव्यक्ति उपन्यास में दिखाई पड़ती है उतनी हिन्दी की किसी भी अन्य गद्य विधा में नहीं मिलती। जीवन और जगत के अत्यधिक निकट होने के कारण उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्य रूप बन गया है। अतः समकालीन हिन्दी महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में स्त्री-विमर्श के दो आयाम हैं- परिवार और समाज। दोनों ही संस्थानों में स्त्री द्वितीय.. पराधीन और उत्पीड़ित रहीं है। इन प्रचलित मान्यताओं से टकराती आज की स्त्री का मुक्ति संघर्ष घर-परिवार के शुरू होता है फिर समाज की अनेकायामिता में वह अपना अस्तित्व गढ़ती है। समाज की मुख्यधारा में प्रविष्ट होती है। उसने अपनी सृजनात्मकता को पहचाना है। वैचारिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में उसने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है।

स्त्री का आत्मसंघर्ष अपनी निरन्तरता में प्रत्येक युग में विद्यमान रहा है। परम्परागत दृष्टि से स्त्री के प्रति व्यवस्था का रवैया निश्चित मानदण्डों, आदर्शों के नियत व्यवहारों से संचालित होता रहा है, जिसमें स्त्री को तय कर दी गई भूमिका में निर्धारित आदर्श आचरण संहिता के अनुसार जीना है, जिसके निर्धारण का अधिकार शताब्दियों से पुरुष ने अपने पास सुरक्षित रखा है।स्त्री विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की स्थिति की पड़ताल उसके संघर्ष एवं पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ बदलते सामाजिक सन्दर्मो में उसकी भूमिका, तलाशे गए रास्तों के कारण जन्में नए प्रश्नों से टकराने के साथ-साथ आज भी स्त्री की मुक्ति का मूल प्रश्न उसके मनुष्य के रूप मेंअस्वीकारे जाने का प्रश्न ही है। स्त्री होना और मनुष्य होना परस्पर अपवर्जक हैं।उसके मनुष्य को स्वीकारना आज मानवता का सबसे बड़ा सवाल है। आज भी मनुष्य' की अवधारणा में स्त्री और पुरुष दोनों को शामिल नहीं किया जाता।

स्त्री जब लिखती है तब अपने निजी जीवन और निजता को दाँव पर लगा रही होती है। अपने घर-परिवार और समाज का भय और प्रतिक्रिया का डर अवचेतन रूप से उसकी कलम को संचालित कर

'सेल्फ सेंसर' का काम करता है।स्त्री लेखन पर इसका प्रभाव तीन प्रकार से पड़ता है। प्रथम जोड़कर देखने की प्रक्रिया से बचने के लिए स्त्री रचनाकार आत्म सचेत होकर लिखती है तब ईमानदार लेखन, आत्मानुभूत लेखन, प्रत्यक्ष अनुभव का तर्क वर्जनाओं में घिर जाता है। द्वितीयतः स्त्री रचनाकार का लेखन सामाजिक यथार्थ की प्रामाणिकता से लबरेज होने पर 'अभिधा' में बोल्ड और व्यंजना में चालू स्त्री का मैडल उसके (रचनाकार के) माथे पर चिपका दिया जाता हैं।तृतीयतः स्त्री-जब स्त्री के बारे में उसका स्वतन्त्रता, अस्मिता, समान अवसरों और अधिकारों के बारे में लिखती है व्यवस्था के लिए खतरा पैदा करती है। आन्तरिक और बाह्य जगत के अनुभवों को दुःसाहस के साथ लिखने वाली न केवल भारतीय वरन् समूचे विश्व साहित्य में महान लेखिकाओं का त्रासद जीवन शोध का विषय है। कृष्णा सोबती एक व्यक्तिगत साक्षात्कार में स्वीकार करती है कि "मैंने अपने जीवन में जो सिद्ध किया वह मेरी स्वायत्तता है, लेकिन इसके लिए मुझे बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। 'हम हशमत' में उनके अनुभव हैं कि 'मित्रो मरजानी' की मित्रों का व्यक्तित्व कृ ष्णा जी से जोड़कर देखा जाने लगा, 'यारों के यार के बाद बातचीत करते लोगों को बोलचाल में गालियों के नगीने का इन्तजार रहने लगा और 'सूरजमुखी अँध् ोरे के पुरुष पात्रों को कृष्णा जी के आसपास खोजा जाने लगा।

स्त्री लेखन में सेक्स सम्बन्धी वर्णनों में लेखिका को उपस्थित मान लेना स्त्री को,चाहे वह लेखक ही क्यों न हो, देह और देह सम्बन्धों के समझने, पहचानने का पितृसत्तात्मक नजरिया भी है। पुरुष का अपनी जैविक स्थिति से बाहर न आ पाना भिन्न अर्थों में प्रश्न खड़े करता है। द्वितीयतः स्वचेती स्त्री ने जब भी स्वविवेक से कोई निर्णय लेना चाहा है, 'व्यवस्था के विध्वंस के आसन्न संकट' को सूंघ लिया गया है और प्रतिरोध किया गया है। फिर चाहे निर्णय नारीवादी आन्दोलनों के हों, लेखन में हों, जीवन में हों ऐसी स्त्री की न केवल भर्त्सना की जाती है वरन् पितृसत्तातमक व्यवस्था अपने परिवार की स्त्रियों को ऐसी स्त्रियों से बचाए भी रखना चाहती है।

यह स्थिति की तोड़ने का प्रयास इधर रचनाओं में बड़ी साफगोई और यथार्थता के साथ लेखिकाओं ने किया है। मृदुला गर्गजी का 'कठगुलाब इसका प्रमाण है। 'कठगुलाब' का शिल्प पिछले उपन्यासों के शिल्प से इतर पाँच खण्डों में है और पाँचों के दरवाजे पर आत्मविश्वास से लबरेज पात्र हाथ बढ़ाता है।'कठगुलाब' स्त्री मुक्ति के शेष समाज के निरपेक्ष एक ऐसी आत्यन्तिक समस्या मानकर लिखा गया है जिसके सारे मुद्दे पश्चिमी 'फैमिनिज्म' से लिये गये हैं- विरोध और समर्थन दोनों में। यह जिन लोगों या वर्ग की कहानी है, उनकी मजबूरी यह है कि वे अपनी समस्याओं को उसी भाषा में समझ सकते हैं। विशिष्ट भारतीय सन्दर्भ में 'स्त्री विमर्श के सवाल को अपने समाज से जोड़कर देखे जाने की जरूरत है और यहाँ सवाल उन सबका भी है, जिन्हें मुक्ति की जरूरत है। भारत का पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री को ही दमन का शिकार नहीं बनाता। बल्कि वर्णव्यवस्था के नाम पर एक बड़े वर्ग को भी दलित बनाये रखता है। जन्म या कठगुलाब की मूल समस्या श्रम और उत्पादन के स्रोतों से कटे और परोपजीवी लोगों के 'बंजर' की कहानी है।

नारी चेतना की प्रखर ध्वज वाहिका के रूप में मैत्रेयी पुष्पा का 'इदन्नम' में मन्दाकिनी केन्द्रीय पात्र है जिसके पिता की हत्या पश्चात् 'अम्मा' (प्रेम) जय-पराजय और टूटने-जुड़ने की जीवन लीला तुमुल संघर्ष में घटित-विघटित होती है।इदन्नमम् का बिल्कुल आधुनिक सन्दर्भों में निष्पत्ति और प्रयोग अकारण नहीं है इदन्नमम् अर्थात् यह मेरे लिए नहीं आत्म का विसर्जन है लोकपक्ष में आत्मार्पण ।इसी तरह स्त्री जीवन की खामोशी और अपमान, उत्पीड़न को आकार दिया है। प्रभा खेतान की 'छिन्नमस्ता' ने जन्म से लेकर मृत्यु तक स्त्री जीवन के रेशे-रेशे पर यौन उत्पीड़न को सहती हुई भी खामोश और अकेलेपन में जाती है या दूसरे दूसरे शब्दों में सामाजिक व्यवस्था, निषेधों-वर्जनाओं ने उसे चुप्पी साधे रखने के लिए मजबूरी का दामन पकड़ा दिया है। नायिका प्रिया को जन्म से विद्रोही बनाने के लिए उसकी यातनाओं की लम्बी पृष्ठभूमि है । 'छिन्नमस्ता 'स्त्री विमर्श, यातना प्रपीड़क, विद्रोह आदि से मुक्ति की गाथा प्रमाणित होती है। विपरीत स्थितियों में भी इसके पात्र अपनी राह पकड़कर इन स्थितियों से मुकाबला करते हुए मुक्ति पाते हैं, इन विद्रूपताओं, विरोधों के आँच के बाद भी प्रिया में जिन्दगी जीने की उद्दाम लालसा और अपने होने को प्रमाणित करती हुई अपने-पराये की विभक्तियों को तोड़ती है। 'संगसार' की नायिका अपने मांसल फैशन के कारण कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजान की याद दिलाती है, पर मित्रों की तरह वह चौखट से लौटती नहीं, उसे फलाँग जाती है और मोहब्बत करने के गुनाह के लिए संगसार कर दी जाती है।

मन्नू भण्डारी एक ऐसा नाम है जो हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत नारी-लेखन का महत्वपूर्ण स्तम्भ है। 'आपका बंटी' उनकी बहुचर्चित कृति है। 'आपका बंटी' में बालक बंटी के साथ-साथ उसकी माँ शकुन की कथा भी चलती रहती है। शकुन ने जब तक अपने आप को पहचाना नहीं या पहचानने की कोशिश नहींकी तब तक सब कुछ धीमी गति से चलता रहा परन्तु जैसे ही उसके अन्दर के नारी-मन में अपनी अस्मिता की तलाश शुरू की, उसके शान्त जीवन में तूफान खड़ा हो गया। उसकी अपनी अस्मिता का संधान पुरुष को चुनौती लगने लगा और इसकी परिणति अलगाव में होती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि शकुन ने स्थितियों से समझौता करने से बेहतर अलगाव के विकल्प को अपनाया जो उसकी बदलती मानसिक चेतना का परिचाय है। उसका यह बदलाव परम्परागत भारतीय संस्कार के विरोध में है। परन्तु बदले परिवेश में अस्वाभाविक नहीं है।

छिन्नमस्ता' आज के युग का सर्वाधिक सशक्त उपन्यास है जो स्त्री विमर्श का और विशेषकर यौन शोषण का दिल दहला देने वाला दस्तावेज है। अपने इस आत्मकथात्मक उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने अपने दुर्दमनीय साहस का परिचय दिया है। आक्रोश और विद्रोह की सीमा को पार करता हुआ यह उपन्यास न जाने कितनी महिलाओं की दुखती रग को सहला गया। प्रिया का, अपने भाई के द्वारा साढ़े नौ वर्ष की उम्र से जो यौन शोषण शुरू होता है, वह निरन्तर जारी रहता है। उसका अपना परिवार, यहाँ तक कि उसकी माँ भी उसके प्रति उदासीन है। महत्वपूर्ण बात यह है कि उसके यौन शोषण को बड़े सामान्य ढंग से लिया जाता है। ऐसा क्यों है? यह प्रश्न वार-बार झकझोरता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में यौन-शुचिता केवल स्त्री के लिए है? क्या सारी वर्जनाएँ केवल स्त्री के लिए हैं? प्रिया तब तक शोषित होती रही, जब तक

पारिवारिक सम्बन्धों को ढोती रही। अपने को शोषण से मुक्त करने के लिए उसने अपने सारे सम्बन्धों को तिलांजलि दे दी। अपने पुत्र तक को अपने से अलग कर दिया। प्रिया को उसकी आत्मदग्ध करती यन्त्रणा उसकी समस्त आस्था को चूर-चूर कर डालती है- "मुझे नफरत है उस पुरुष जाति से। नफरत है उससे जो मासूम, छोटी नादान लड़की को भी नहीं छोड़ता औरत होना नहीं चाहती। मैं कभी किसी से प्रेम नहीं करूंगी। सेक्स से घृणा है मुझे, बेहद घृणा।" छिन्नमस्ता सदियों से चली आ रही नारी की तस्वीर को एक नया रूप देने में समर्थ हुआ है। सशक्त की और बढ़ता हुआ, अपने आप से लड़ता हुआ, नारी का यह बदला हुआ रूप निश्चित रूप से चौंकाने वाला है। जो स्त्री विमर्श को हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

उषा प्रियम्वदा की रचनाओं में नारी की अन्तर्चेतना के विभिन्न पहलू दिखाई पड़ते हैं। उनमें मुक्ति की छटपटाहट और मुक्त न हो पाने का दर्द भी है। पचपन खम्भे और लाल दीवारें नाम उपन्यास की नायिका अपने पारिवारिक उलझनों के कारण कभी भी इन दिवारों को लाँघ नहीं पाती है।अपने संस्कारों के कारण मुक्ति की छटपटाहट समेटे हुए जीती रहती है। रुकोगी नहीं राधिका की नायिका एक कदम आगे बढ़कर अपने सारे सम्बन्धों को तोड़ते हुए एक अलग जीवन जीने को कोशिश भर कर पाती है। उसके संस्कार उसको प्रत्यावर्तन के लिए मजबूर कर देते हैं। इन दोनों उपन्यासों में नारी की बदलती हुई चेतना का संकेत भर मिलता है। शेषयात्रा की अनु पति के द्वारा अस्वीकार कर दिये जाने पर नारी की परम्परागत असहायता और सामथ्र्यहीनता को अनुकरणीय तरीके से तोड़ती है। अपनी निराशा से उबर कर अपने सफल व्यक्तित्व का निर्माण करने में समर्थ होती हैं। एक घरेलू औरत से लेकर डॉक्टर बनने तक की यात्रा ही उसकी सशक्ता को प्रमाणित करता है। एक निष्ठावान पत्नी में आया यह बदलाव वास्तव में सराहनीय है।

मैत्रेयी पुष्पा नारी-विमर्श और अस्मिता के प्रत्येक सूक्ष्म पहलुओं को उजागर करती हुई समाज और पुरुष व्यवस्था को न केवल कठघरे में खड़ा करती है बल्कि अपनी वैचारिक समझ से उन्हें निरूत्तर भी कर देती हैं। इनकी वैचारिक पुस्तकें ही इस बात को प्रमाणित करती हैं कि नारी की अन्तर्चेतना कितनी परिमार्जित और जागरूक हो गयी है। लेखिका स्वयं इसकी अन्यतम उदाहरण हैं। स्पष्टता, मैत्रेयी पुष्पा की कृतियों की विशेषता है। इनका आत्मकथात्मक उपन्यास कस्तुरी कुण्डल बसै की मौलिकता इस बात में है कि यह उपन्यास स्त्री के उस मनोविज्ञान का परिचय कराता है जो पुरुष अनुभवों से अलग है। इस क्रम में गोपनीयता निषिद्धता की सीमा को पार भी कर जाती है। मैत्रेयी अपनी और अपनी माँ, दोनों की गोपनीयता को भंग करती हैं। इस उपन्यास में माँ और बेटी आपस में नहीं टकराती है बल्कि उनकी स्त्री की अस्मिता टकराती है। मैत्रेयी पुष्पा के नारी-चरित्र अपनी शर्तों पर जीना चाहते हैं। अपनी वैचारिक पुस्तक में लेखिका ने ऐसी नयी स्त्री की कामना की है जो हर हाल में जीने की इच्छा रखती हो और आकांक्षाओं से परिपूर्ण हो।

हिन्दी-साहित्य के कुछ समकालीन कथाकारों की रचनाएँ, जिनको विवेचना का विषय बनाया गया है, वे नारी के बदलते स्वरूप और उसकी बदलती अन्तर्चेतना की ओर संकेत करते है। नारी की चेतना अब उन पारम्परिक मूल्यों से समझौता करने को तैयार नहीं है जो उसके अधिकारों का हनन करते हैं। वस्तुतः उसका विद्रोह उस भारतीय समाज से है जिसमें "औरत की जिन्दगी उस नैतिकता से बँधी है,

जिसकी डोर पिता, पति और पुत्र के हाथ में है। स्वतन्त्रता बन्धक है क्योंकि स्त्री को झूठी, मक्कार, धूर्त और कुटिनी, चुगलखोर कहा गया है।"

संदर्भ ग्रंथ :-

1. छिन्नमस्ता,प्रभा खेतान
2. इदन्नमम्, मैत्रेयी पुष्पा
3. कठगुलाब,मृदुला गर्ग
4. स्त्री विमर्श , डॉ विनय कुमार पाठक,भावना प्रकाशन, दिल्ली,
5. आपका बंटी, मन्नू भंडारी
6. भारतीय नारी: दशा दिशा,आशारानी व्होरा
7. स्त्री पंरपरा और आधुनिकता, राजकिशोर,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली